

L=h foe' k% | e; ds | kfk cnryrs | jkcdkj

Dr. Chetna Pandey

Dept. of Hindi, Deen Dayal Upadhyay Gorakhpur University, Gorakhpur, Uttar Pradesh.

i lrkouk

समाज और साहित्य में 'स्त्री विमर्श' शब्द भले ही अब प्रचलन में आया हो लेकिन तमाम ग्रन्थों का अवलोकन करें तो पाते हैं कि नारी जीवन की विसंगतियों और विडंबनाओं की चर्चा वैदिक काल या सम्भवतः इससे भी पूर्व आरम्भ हो गई थी। लगभग दो शताब्दियों से हिन्दी साहित्य का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि न केवल छिटपुट ढंग से बल्कि श्रृंखलाबद्ध विचारों के रूप में ऐसा साहित्य विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से समाज के सम्मुख आया है जो नारी के जीवन के विभिन्न पहलुओं की समीक्षा करता है। यह साहित्य न केवल उन परिस्थितियों पर दुःखी है वरन इस हालत के लिए जिम्मेदार लोगों को कटघरे में भी खड़ा करता है। यह साहित्य हालात को अनुकूल बनाने के उपायों पर भी चिन्तन करने के साथ-साथ अपना आक्रोश भी व्यक्त करता है।

विमर्श का अर्थ है 'जीवन्त बहस'। नारी जागरण को लेकर कुछ क्रान्तिकारी कदम महत्वपूर्ण रहे। ये कदम निश्चित रूप से नारी विमर्श की परिकल्पना को प्रभावित करते हैं—

क— 1789 की फ्रांसीसी कान्ति, जिसने स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसी चिर प्रतीक्षित स्थिति को स्थापित किया।

ख— 1829 में सती प्रथा का कानूनी विरोध।

ग— 1848 में सिनेका फालस न्यूयार्क में ग्रिम बहनों की अगुआई तीन सौ स्त्री-पुरुषों की सभा जिसमें स्त्री मुक्ति आन्दोलन की नींव रखी गई।

घ— 1867 में प्रसिद्ध अंग्रेज दार्शनिक और चिन्तक जॉन स्टुअर्ट मिल द्वारा ब्रिटिश पार्लियामेंट में वयस्क मताधिकार के लिए प्रस्ताव रखा जाना।

इन घटनाओं ने विमर्श को नया मंच प्रदान किया। वस्तुतः नारी जीवन की त्रासदी जितनी पुरानी है स्त्री विमर्श की आयु भी लगभग उतनी ही है। इन तमाम परिस्थितियों का सामना करते हुए नारी अपनी 'होकमेकर' और 'होमब्रेकर' छवियों के साथ अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ती रही।

गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा, घोषा और विद्योत्तमा जैसी कुछ विदुषियों का नाम लेकर समाज अपनी तुष्टि का विधान करने की कोशिश तो कर सकता है लेकिन सच्चाई यह है कि किसी भी काल में नारियों की स्थिति पूर्णतया संतोषजनक नहीं रही है। ऋग्वेद ने तो समाज को उसी काल में समझाया कि जहां नारियों की पूजा होती है वहां देवता रमण करते हैं और जहां ऐसा नहीं होता वहां सभी क्रियाएं निष्फल हो जाती हैं—“यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता। यत्राः तु न पूज्यन्ते सर्वा अफलाः कियन्ते।” वर्तमान समय में इस पूजा शब्द को सम्मान या महत्व देने के सन्दर्भ में देखा जाना चाहिये।

गुलामी के दिनों में जब साहित्य का एक बड़ा हिस्सा देश की स्वाधीनता के स्वप्न और स्वतन्त्रता संग्राम को समर्पित था उसी दौर में एक धारा ऐसी भी बह रही थी जो स्त्रियों की शोचनीय दशा को लेकर भी चिन्तित थी। 19वीं और 20वीं सदी में नारी की दीन दशा पर काफी कुछ लिखा गया। 'जनक दुलारी संग्रह' में संकलित लगभग 300 पत्रिकाओं के प्रथम अंक ऐसे हैं जो स्त्री विमर्श ही हैं। हां, उनका स्वरूप कुछ भिन्न लग सकता है। स्वतन्त्रतापूर्व हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के प्रथम अंक में महिला विमर्श, जिसके तहत महिला

संपादकों के संपादकीय, स्त्री समस्या पर लेख, स्त्री विमर्श पर समकालीन पुरुष लेखकों के विचार साथ ही साथ महिला आन्दोलन, समाज में स्त्रियों की स्थिति कल, आज और कल की कसौटी पर और गृह विज्ञान के साथ आज की प्रगतिशील नारियों की समस्याओं पर महत्वपूर्ण काम है।

आजादी के पहले 'दंपति', 'कमला', 'महिला', 'नारी' और 'हिन्द मार्तण्ड' जैसी पत्रिकाएं नारी का पक्ष रख रही थीं वह भी तब जब स्त्री आज की तरह आत्मनिर्भर और स्वतंत्र नहीं थी। अर्थ और वर्चस्व पर पुरुषों का ही अधिकार था। स्त्री साधनहीन थी और उसके पास विश्वविद्यालय की भारी डिग्रियां भी नहीं थीं। मगर कलम की ताकत से वे स्वयं को सिद्ध कर रही थीं। यही नहीं पुरुष रचनाकारों ने भी अपने लेखों में स्त्री वेदना को महत्वपूर्ण ढंग से रखा। प्रेमचन्द, शिवपूजन सहाय, बाबूराव विष्णु पराडकर, द्वारिका प्रसाद मिश्र, बनारसी दास चतुर्वेदी, धीरेन्द्र वर्मा, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' दुष्यन्त कुमार ने भी इस विषय पर मजबूती से कलम चलाई। उमाशंकर मेहता ने 'दंपति' के संपादकीय में भ्रूणहत्या और गर्भपात को अमानवीय बताया। बाल विवाह पर उन्होंने अभिभावकों को जमकर धिक्कारा है—“धिक्कार है उन है उन विधवाओं के माता-पिताओं और अभिभावकों को, जो अपनी अबोध बालिकाओं की ऐसी छोटी उम्र में शादी कर देते हैं”। 'कमला' के प्रवेशांक के संपादकीय में बाबूराव विष्णु पराडकर बहुपत्नी प्रथा का पुरजोर विरोध करते हैं—“जिस प्रकार एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह नहीं करना चाहिये। विशेषकर हिन्दू समाज में, जहां उच्च वर्गों की बाल विधवाओं को भी पुनः विवाह करने की अनुमति नहीं है, एक पुरुष बहु विवाह करे यह उचित नहीं है। यह प्रथा बुरी है और रोकनी जानी चाहिये।” हिन्दू मार्तण्ड की संपादक मैनावती जैन मैना जहां दहेज रूपी सामाजिक बुराई के खिलाफ आवाज उठाती हैं वहीं पुरुषों को यह नसीहत देती भी नजर आती हैं—“संप्रदायवादी पुरुषों को चाहिये कि अपनी माताओं, बहनों, पत्नियों और कन्याओं से उपदेश ग्रहण करें। पर इसकी संभावना कम है। पागल कब स्वेच्छा से दवा लेता है।”

'नारी' पत्रिका की संपादक सुभद्रा कुमारी चौहान उस दौर में एक नवीन कान्ति का स्वर मुखरित करती नजर आती हैं। वह सरकार से 'स्त्री सैनिक संगठन' बनाने और आत्मरक्षा के लिए छुरा, तलवार, बंदूक व लाठी रखने की अनुमति मांगती हैं। 1947 के दौर में इस तरह की मांग का उठना सामान्य नहीं कान्तिकारी पहल था। नारी शिक्षा के मामले में वह पश्चिमी पद्धति के खिलाफ थीं। उनके अनुसार नारियों की शिक्षा अनिवार्य है लेकिन भारतीय मूल्यों और संस्कारों का पालन करते हुए।

उमाशंकर मेहता के 'दंपति' में एक ही गाडी के दो पहिये होने के बावजूद स्त्री और पुरुष, पति और पत्नी की सामाजिक और पारिवारिक स्थितियों में अन्तर पर सवाल उठाया गया है। बेटे के जन्म पर होने वाले शोक पर भी पत्रिका सवाल उठाती है।

बदलते समय के साथ स्त्री विमर्श का दायरा भी बढ़ता रहा। एक समय घर के भीतर अपने अधिकारों की बात उठाने वाली स्त्री को लगने लगा कि उसके दायरा केवल घर की चौहद्दी मात्र नहीं उसका जीवन तो पूरे संसार से जुड़ने के लिए है। 'महिला' में

प्रकाशित अपने लेख 'भारत का वर्तमान महिला आन्दोलन और उसकी दशा' में ईश्वरी देवी कहती हैं- "सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथा प्रभावशाली परिवर्तन यह हुआ कि अब महिलाएं घर की चहारदीवारी में बन्द नहीं रहना चाहती। बुराई की भयानक प्रथा को उन्होंने कुचलना शुरू कर दिया है। अब वे भी परमात्मा की अपूर्व सृष्टि-खुली हवा-धूप और सुरम्य प्रकृति का उसी तरह से उपभोग करने लगी हैं जैसे कि पुरुष। भारतीय स्त्रियों की मनोवृत्तियों में बहुत परिवर्तन हो गया है।" इस प्रकार नारी जीवन में पनप रहे स्वतन्त्रा के भाव को साहित्य देख और चित्रित कर रहा था।

वर्तमान विमर्श सोलहवीं सदी की उस मानसिकता को खारिज करने को तत्पर है जिसमें पुरुष स्त्री को निजी सम्पत्ति मानकर मनमाना व्यवहार करता था। आज की स्त्री पढ़ी-लिखी, जागरूक और तर्कशीला है। परम्परागत सोच से जकड़े पुरुष को उसकी बुद्धिमत्ता से खतरा महसूस होता है। वह स्वयं को असुरक्षित मानते हुए स्वयं का प्रभाव स्थापित करने के लिए कुछ भी उचित-अनुचित करता है। उसको कमजोर करने के प्रयास में वह कुछ भी कर गुजरता है लेकिन आधुनिक स्त्री अब उसके चंगुल में फंसने को तैयार नहीं। 'स्त्री विमर्श के सुलगते सवाल' में डॉ० पुनीत बिसारिया कहते हैं कि मनुष्य का अर्थ पुरुष मान लिया जाये और स्त्री को इस कोटि से बहिष्कृत कर दिया जाये तो पुरुष अहंकारी हो ही जायेगा। आज का विमर्श 'सौतिया डाह' और 'फीमेल जेलिसी' के पुर्लिंगों की मांग उठाता है।

डॉ० रमेश कुन्तल 'मेघ' स्वीकार करते हैं कि आजकल नारी की ऐतिहासिक कर्म भूमिकाएं गृहिणी, धात्री, जननी, उपचारिका, सेविका, दासी आदि बदल रही हैं। वह गृह के बाहर के काम-धन्धों को अपना रही है और गृह के अन्दर की नीरस मजदूरी से स्वतंत्र हो रही हैं। गृह की धुरी के ढीला होने के साथ ही विवाह की संस्था के अस्तित्व पर प्रश्न पर उठ रहे हैं। अर्थात् श्रम के विभाजन के सामंती आधार टूट रहे हैं और नई स्त्री एक-यौनता की धारणा को स्वीकार कर रही है।

समय के साथ विमर्श के आयाम बदलते रहे। जहां मेहता के रूप में प्रेमचन्द मालती सरीखे पात्रों का आधार लेकर स्त्री तेजस्विता की सीमा तय करने की कोशिश करते हुए कहते हैं कि जब स्त्री में पुरुष के गुण आ जाते हैं तो वह कुलटा हो जाती है। वहीं श्रृंखला की कड़ियां में अपनी बात करते हुए महादेवी कहती हैं- "हमें न किसी भी जय चाहिये न किसी से पराजय, न किसी पर प्रभुत्व चाहिये, न किसी पर प्रभुता। केवल अपना वह स्थान व स्वत्व चाहिये जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं है परन्तु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग नहीं बन सकती।" 'जैनेन्द्र 'पत्नी' की सुनन्दा और 'त्यागपत्र' की मृणाल और अज्ञेय 'रोज' और 'नदी के द्वीप' के सहारे स्त्री जीवन को निकट से देखते हैं।

न चाहते हुए भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था को आंसू पी कर स्वीकार करने वाली व्यथा कथाएं विमर्श का हिस्सा हैं। शशिप्रभा की 'नावें' और 'सीढियां', मृदुला गर्ग का 'उसके हिस्से की धूप', मंजुल भगत का 'अनारो', कुसुम अंसल का 'उसकी पंचवटी', उषा प्रियंवदा का 'पचपन खम्भे लाल दीवारें', मन्नू भण्डारी का 'आपका बंटी', कृष्णा सोबती का 'सूरजमुखी अंधेरे में' जैसी कृतियां पितृसत्तात्मक व्यवस्था और दाम्पत्य के तमाम पेंचोखम के इर्द-गिर्द घूमती हैं।

कृष्णा सोबती जैसी लेखिकाओं ने 'मंदा', 'सारंग' और 'कदम बाई' जैसे पात्र ये स्पष्ट रूप से व्यक्त करने लगे थे कि नारी की व्यथा केवल नारी ही समझ सकती है। वे नारी देह और मन दोनों के साथ पुरुष के व्यवहार को कठोर ही पाती हैं। इक्कीसवीं सदी का स्त्री विमर्श 'दीवार में एक खिड़की रहती है' के रूप में देख सकते हैं।

अब विमर्श उस मोड़ तक आ पहुंचा है जहां से स्त्री पुरुषों की भांति स्वेच्छाचार, यौन सम्बन्धों को लेकर आजादी, विवाह पूर्व या विवाहेतर संबंधों की आजादी का प्रश्न उठाती है। उसे लगता है कि जब

पुरुषों के पास ये अधिकार हैं तो उसके पास क्यों नहीं। जैसे-जैसे स्त्री की दुनिया बड़ी होती गई उसके लिये आजादी के मायने भी बदलते गये। नारी ने घर की दहलीज लांघ आज समय से आंख मिलाना आरम्भ कर दिया है और वह अनन्त आकाश को बांधों में समेट लेना चाहती है। स्त्री विमर्श का साहित्य आरम्भ से लेकर अब तक वस्तुतः इन्हीं वैचारिक धरातलों को स्वयं में समेटता रहा है।

I UnHkz xJFk

1. स्त्री विमर्श के सुलगते सवाल-डॉ० पुनीत बिसारिया
2. गेदान-प्रेमचन्द
3. श्रृंखला की कड़ियां-अपनी बात-महादेवी वर्मा
4. पत्नी, त्यागपत्र-जैनेन्द्र
5. रोज, नदी के द्वीप-अज्ञेय
6. नावें, सीढियां-शशिप्रभा शास्त्री
7. उसके हिस्से की धूप-मृदुला गर्ग
8. अनारो-मंजुल भगत
9. उसकी पंचवटी-कुसुम अंसल
10. ऋग्वेद
11. हिन्द मार्तण्ड-मैनावती जैन मैना
12. कमला-बाबूराव विष्णुराव पराड़कर
13. दम्पति-शिवरत्न शुक्ल
14. नारी -सुभद्रा कुमारी चौहान, हरदेव मलकानी
15. महिला-सीता देवी